वेदोंमें पर्यावरण-रक्षा

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्०डी०)

भारतके मनीषियोंने हजारों वर्ष पूर्व मानव-जीवनके कल्याणार्थ पर्यावरणका महत्त्व और उसकी रक्षा, प्रकृतिसे सांनिध्य, संवेदनशीलता, रोगोंके उपचार तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक उपयोगी तत्त्व निकाले थे। वेदकालीन समाजमें न केवल पर्यावरणके सभी पहलुओंपर चौकन्नी दृष्टि थी, वरन् उसकी रक्षा और महत्त्वको भी स्पष्ट किया गया था। उन लोगोंकी भी दृष्टि पर्यावरण-प्रदूषणकी ओर थी, अतः उन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्षरूपमें पर्यावरणकी रक्षा की और समाजका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। वे भूमिको ईश्वरका रूप ही मानते थे। पर्यावरणकी रक्षा पूजाका एक अविभाज्य अङ्ग था, जैसा कि कहा भी गया है—

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम्।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

(अथर्ववेद १०। ७। ३२)

अर्थात् 'भूमि जिसकी पादस्थानीय और अन्तरिक्ष उदरके समान है तथा द्युलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्मको नमस्कार है।'

यहाँ परमब्रह्म परमेश्वरको नमस्कारकर प्रकृतिके अनुसार चलनेका निर्देश किया गया है। वेदोंके अनुसार प्रकृति एवं पुरुषका सम्बन्ध एक-दूसरेपर आधारित है। ऋग्वेदमें प्रकृतिका मनोहारी चित्रण हुआ है। वहाँ प्राकृतिक जीवनको ही सुख-शान्तिका आधार माना गया है। किस ऋतुमें कैसा रहन-सहन हो, क्या खान-पान हो, क्या सावधानियाँ हों—इन सबका सम्यक् वर्णन है।

ऋग्वेद (७। १०३। ७)-में वर्षा-ऋतुको उत्सव मानकर शस्यश्यामला प्रकृतिके साथ अपनी हार्दिक प्रसन्नताकी अभिव्यक्ति की गयी है—

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव॥

अर्थात् 'जैसे जिस दिन पहली वर्षा होती है, उस दिन मेढक सरोवरोंको पूर्णरूपसे भर जानेकी कामनासे चारों ओर बोलते हैं, इधर-उधर स्थिर होते हैं, उसी प्रकार हे ब्राह्मणो! तुम भी रात्रिके अनन्तर ब्राह्म मुहूर्तमें जिस समय सौम्य-वृद्धि होती है, उस समय वेद-ध्वनिसे परमेश्वरके यज्ञका वर्णन करते हुए वर्षा-ऋतुके आगमनको उत्सवकी तरह मनाओ।'

वेदोंमें पर्यावरणको अनेक वर्गोंमें बाँटा जा सकता

है। जैसे—(१) वायु, (२) जल, (३) ध्वनि, (४) खाद्य और (५) मिट्टी, वनस्पति, वनसम्पदा, पशु-पक्षी-संरक्षण आदि। सजीव जगत्‌के लिये पर्यावरणकी रक्षामें वायुकी स्वच्छताका प्रथम स्थान है। बिना प्राणवायु (ऑक्सीजन)-के क्षणभर भी जीवित रहना सम्भव नहीं है। ईश्वरने प्राणिजगत्‌के लिये सम्पूर्ण पृथ्वीके चारों ओर वायुका सागर फैला रखा है। हमारे शरीरके अंदर रक्त-वाहिनियोंमें बहता हुआ रक्त बाहरकी तरफ दबाव डालता रहता है, यदि इसे संतुलित नहीं किया जाय तो शरीरकी सभी धमनियाँ फट जायँगी तथा जीवन नष्ट हो जायगा। वायुका सागर इससे हमारी रक्षा करता है। पेड़-पौधे ऑक्सीजन देकर क्लोरोफिलकी उपस्थितिमें, इसमेंसे कार्बनडाईऑक्साइड अपने लिये रख लेते हैं और ऑक्सीजन हमें देते हैं। इस प्रकार पेड़-पौधे वायुकी शुद्धिद्वारा हमारी प्राण-रक्षा करते हैं।

वायुकी शुद्धिपर बल

वायुकी शुद्धि जीवनके लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस तत्त्वको यजुर्वेद (२७। १२)-में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन॥

अर्थात् 'उत्तम गुणवाले पदार्थोंमें उत्तम गुणवाला प्रकाशरहित तथा सबको प्राप्त होनेवाला ('**तनूनपात्**') जो वायु शरीरमें नहीं गिरता, वह कामना करनेयोग्य मधुर जलके साथ श्रोत्र आदि मार्गको प्रकट करे, उसको तुम जानो।'

वायुको शुद्ध तथा अशुद्ध दो भागोंमें बाँटा गया है— (१) श्वास लेनेके योग्य शुद्ध वायु तथा (२) जीवमात्रके लिये हानिकारक दूषित वायु—

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः॥

(ऋक्० १०। १३७। २)

अर्थात् 'प्रत्यक्षभूत दोनों प्रकारकी हवाएँ सागर-पर्यन्त और समुद्रसे दूर प्रदेशपर्यन्त बहती रहती हैं। हे साधक! एक तो तेरे लिये बलको प्राप्त कराती है और एक जो दूषित है, उसे दूर फेंक देती है।'

हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजोंको यह ज्ञान था कि हवा कई प्रकारके गैसोंका मिश्रण है, जिनके अलग-अलग गुण एवं अवगुण हैं; इनमें ही प्राणवायु (ऑक्सीजन) भी है, जो जीवनके लिये अत्यन्त आवश्यक है—

यददौ वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे॥ (ऋक्० १०। १८६। ३)

अर्थात् 'इस वायुके गृहमें जो यह अमरत्वकी धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवनके लिये आवश्यक है।'

शुद्ध वायु कई रोगोंके लिये औषधिका काम करती है, यह निम्न ऋचामें दिखाया गया है—

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते॥

(ऋक्० १०। १३७। ४)

अर्थात् यह जानो कि शुद्ध वायु तपेदिक-जैसे घातक रोगोंके लिये औषधिरूप है। 'हे रोगी मनुष्य! मैं वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिंसाकर रक्षणमें आया हूँ। तेरे लिये कल्याणकारक बलको शुद्ध वायुके द्वारा लाता हूँ और तेरे जीर्ण रोगको दूर करता हूँ।' हृदयरोग, तपेदिक तथा निमोनिया आदि रोगोंमें वायुको बाहरी साधनोंद्वारा लेना जरूरी है, यहाँ यह संकेत है—

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्र ण आयूँषि तारिषत्॥ (ऋक्० १०। १८६। १)

अर्थात् 'याद रखिये शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदयके लिये दवाके समान उपयोगी है, आनन्ददायक है। वह उसे प्राप्त कराता है और हमारी आयुको बढ़ाता है।'

जल-प्रदूषण और उसका निदान

जल मानव-जीवनमें पेयके रूपमें, सफाई एवं धोनेमें, वस्तुओंको ठंडा रखने तथा गरमीसे राहत पानेमें, विद्युत्-उत्पादनमें, नदियों-झीलों और समुद्रमें सवारियों और सामानोंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचानेके लिये भाप-इंजनोंको चलानेमें, अग्नि बुझानेमें, कृषि-सिंचाई तथा उद्योगों और भोजन बनानेमें अति आवश्यक है। सभी जीवधारी जलका उपयोग निरन्तर करते रहते हैं, जलके बिना जीवन सम्भव नहीं है। औद्योगिकीकरणके परिणामस्वरूप कल-कारखानोंकी संख्यामें पर्याप्त वृद्धि, कारखानोंसे उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ—कूड़ा-करकट, रासायनिक

अपशिष्ट आदि नदियोंमें मिलते रहते हैं। अधिकांश कल-कारखाने नदियों-झीलों तथा तालाबोंके निकट होते हैं, जनसंख्या-वृद्धिके कारण मल-मूत्र नदियोंमें बहा दिया जाता है, गाँवों तथा नगरोंका गंदा पानी प्रायः एक बड़े नालेके रूपमें नदियों-तालाबों और कुओंमें अंदर-ही-अंदर आ मिलता है। समुद्रमें परमाणु-विस्फोटसे भी जल प्रदूषित हो जाता है। वेदोंमें जल-प्रदूषणकी समस्यापर विस्तारसे प्रकाश पड़ा है।

मकानके पास ही शुद्ध जलसे भरा हुआ जलाशय होना चाहिये—

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहाग्निना॥

(अथर्ववेद ३। १२। ९)

अर्थात् 'अच्छे प्रकारसे रोगरहित तथा रोगनाशक इस जलको मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करनेसे मैं मृत्युसे बचा रहूँगा। अन्न, घृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्निके सहित घरोंमें आकर अच्छी तरह बैठता हूँ।'

शुद्ध जल मनुष्यको दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, प्राणोंका रक्षक तथा कल्याणकारी है—यह भाव निम्न ऋचामें देखिये—

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्त्रवन्तु नः॥ (ऋक्० १०। ९। ४)

अर्थात् 'सुखमय जल हमारे अभीष्टकी प्राप्तिके लिये तथा रक्षाके लिये कल्याणकारी हो। जल हमपर सुख-समृद्धिकी वर्षा करे।'

जल चेहरेका सौन्दर्य तथा कोमलता और कान्ति बढ़ानेमें औषधिरूप है। भोजनके पाचनमें अधिक जल पीना आवश्यक है, यह विचार निम्न ऋचामें देखिये—

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्॥

(अथर्ववेद ३। १३। ५)

अर्थात् 'याद रखिये, जल मङ्गलमय और घीके समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुरताभरी जलधाराओंका स्रोत भी है। भोजनके पचानेमें उपयोगी तीव्र रस है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देनेवाला, अमरताकी ओर ले जानेवाला मूल तत्त्व है।' आशय यह है कि जलके उचित उपयोगसे प्राणियोंका बल, तेज, दृष्टि और श्रवण-शक्तियाँ बढ़ती हैं।

एक ऋचामें कहा गया है कि जलसे ही देखने-सुनने एवं बोलनेकी शक्ति प्राप्त होती है। भूख, दुःख, चिन्ता, मृत्युके त्यागपूर्वक अमृत (आनन्द) प्राप्त होता है—

आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ् मासाम्।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः॥

(अथर्ववेद ३। १३। ६)

तात्पर्य यह है कि 'देखने-सुनने एवं बोलनेकी शक्ति बिना पर्याप्त जलके उपयोगके नहीं आती। जल ही जीवनका आधार है। अधिकांश जीव जलमें ही जन्म लेते हैं और उसीमें रहते हैं। हे जलधारको! मेरे निकट आओ। तुम अमृत हो।'

कृषि-कर्मका महत्त्व निम्न ऋचामें देखिये, किसानोंके नेत्र जलके लिये वर्षा-ऋतुमें बादलोंपर ही लगे रहते हैं—

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥ (ऋक्० १०। ९। ३)

'हे जल! तुम अन्नकी प्राप्तिके लिये उपयोगी हो। तुमपर जीवन तथा नाना प्रकारकी औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्न आदि पदार्थ निर्भर हैं। तुम औषधिरूप हो।'

ध्वनि-प्रदूषण एवं उसका निदान

भजन-कीर्तन, धार्मिक गीत-गान, धर्मग्रन्थोंका पाठ, प्रार्थना, स्तुति, गुरुग्रन्थसाहिबका अखण्ड पाठ, रामायण, मीरा तथा नानक एवं कबीरके भक्ति-प्रधान भजन उपयोगी हैं। संगीत भक्ति-पूजाका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। खेद है कि आजकल ध्वनिके साधनका दुरुपयोग हो रहा है। रेडियो, ट्रांजिस्टर, टी.वी. ध्वनि-प्रसारक यन्त्र जोर-जोरसे सारे दिन कान फाड़ते रहते हैं। इससे सिरदर्द, तनाव, अनिद्रा आदि फैल रहे हैं। वेदोंमें कहा गया है कि हम स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अधिक तीखी ध्वनिसे बचें, आपसमें वार्ता करते समय धीमा एवं मधुर बोलें—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥

(अथर्ववेद ३। ३०। ३)

अर्थात् 'भाई भाईसे, बहन बहनसे अथवा परिवारमें

कोई भी एक-दूसरेसे द्वेष न करे। सब सदस्य एकमत और एकव्रती होकर आपसमें शान्तिसे भद्र पुरुषोंके समान मधुरतासे बातचीत करें'—

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि॥

(अथर्ववेद १। ३४। २)

अर्थात् 'मेरी जीभसे मधुर शब्द निकले। भगवान्‌का भजन-पूजन-कीर्तन करते समय मूलमें मधुरता हो। मधुरता मेरे कर्ममें निश्चयसे रहे। मेरे चित्तमें मधुरता बनी रहे।'

खाद्य-प्रदूषणसे बचाव

वेदोंने खाद्यके सम्बन्धमें वैज्ञानिक आधारपर निष्कर्ष दिया है। जैसे—

मनुष्य पाचनशक्तिसे भोजनको भलीभाँति खुद पचाये, जिससे वह शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर उसे सुखदायक बना सके। इसी प्रकार पेय पदार्थों, जैसे जल-दूध इत्यादिके विषयमें भी उल्लेख है—

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम्॥

(अथर्ववेद ६। १३५। २)

अर्थात् 'मैं जो कुछ पीता हूँ, यथाविधि पीता हूँ; जैसे यथाविधि पीनेवाला समुद्र पचा लेता है। दूध-जल-जैसे पेय पदार्थोंको हम उचित रीतिसे ही पिया करें। जो कुछ खायें, अच्छी तरह चबाकर खायें'—

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम्॥

(अथर्ववेद ६। १३५। ३)

अर्थात् 'जो भी खाद्य पदार्थ हम खायें, वह यथाविधि खायें, जल्दबाजी न करें। खूब चबा-चबाकर शान्तिपूर्वक खायें। जैसे, यथाविधि खानेवाला समुद्र सब कुछ पचा लेता है। हम शाक-फल-अन्न आदि रसवर्धक खाद्य पदार्थ ही खायें।'

मिट्टी (पृथ्वी) एवं वनस्पतियोंमें प्रदूषणकी रोकथाम

अथर्ववेदके १२ वें काण्डके प्रथम सूक्तमें पृथ्वीका महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। सभी प्राणी पृथ्वीके पुत्र हैं। कहा गया है—

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

पृथ्वीका निर्माण कैसे हुआ है, देखिये—

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः॥

(अथर्ववेद १२। १। २६)

अर्थात् 'भूमि चट्टान, पत्थर और मिट्टी है। मैं उसी हिरण्यगर्भा पृथ्वीके लिये स्वागत-वचन बोलता हूँ।'

नाना प्रकारके फल, औषधियाँ, फसलें, अनाज, पेड़-पौधे इसी मिट्टीपर उत्पन्न होते हैं। उनपर ही हमारा भोजन निर्भर है। अतः पृथ्वीको हम माताके समान आदर दें।

यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे॥

(अथर्ववेद १२। १। ४२)

—याद रखिये, 'भोजन और स्वास्थ्य देनेवाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमिपर ही उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियोंकी माता और मेघ पिता है; क्योंकि वर्षाके रूपमें पानी बहाकर यह पृथ्वीमें गर्भाधान करता है।'

पृथ्वीमें नाना प्रकारकी धातुएँ ही नहीं, वरन् जल और खाद्यान्न, कन्द-मूल भी पर्याप्त मात्रामें पाये जाते हैं, चतुर मनुष्योंको उससे लाभ उठाना चाहिये—

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।
भुजिष्यं पात्रं निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भ्यः॥

(अथर्ववेद १२। १। ६०)

भावार्थ यह है कि 'चतुर मनुष्य पृथ्वीतलके नीचेसे कन्द-मूल खाद्यान्न खोजकर जीवन-विकास करते हैं।'

हम अपनी मिट्टीसे न्याय नहीं कर रहे हैं। अंधाधुंध शहरीकरण, औद्योगिकीकरणके कारण वन तेजीसे काटे जा रहे हैं। मिट्टी ढीली पड़ती जा रही है। खेत अनुपजाऊ हो गये हैं। पेड़ोंके अभावमें वर्षा-ऋतु भी अनियन्त्रित हो गयी है। बढ़ती जनसंख्याकी खाद्य-समस्या मिट्टीके प्रदूषणसे फैली है।